जन्मोपरान्त गर्भपातः 'जीवन का अधिकार' की नैतिकता का वैज्ञानिक विश्लेषण

ज्योति काला
एसोसिएट प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
jyotikala2010@gmail.com

प्राप्त तिथि–31.07.2015, स्वीकृत तिथि–15.08.2015

सार

वैज्ञानिक दर्शन के अनुसार भ्रूण तथा नवजात 'अ–व्यक्ति' होते हैं। दोनो ही नैतिक रूप से वास्तविक व्यक्ति न होकर संम्भावित व्यक्ति होते हैं। अतैव वास्तविक व्यक्तियों यथा माता–पिता, परिवार, समाज आदि के हितों को ध्यान में रखते हुए जिन–जिन परिस्थितियों में गर्भपात की अनुमति है वहाँ जन्मोपरान्त गर्भपात की अनुमति भी दी जानी चाहिए। प्रस्तुत शोध पत्र में नवजात के 'जीवन के अधिकार' के नैतिक प्रश्न का वैज्ञानिक शोध के आधार पर विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द– वास्तविक व्यक्ति, संभावित व्यक्ति, अंतर्विरोधी सम्बन्ध, प्रजनन स्वायत्तता, इच्छा मृत्यु।

After – birth abortion: a scientific analysis of the ethics of 'Right to Live'

Jyoti Kala
Associate Professor, Deptt. of English
B.S.N.V. Post Graduate College, Lucknow-226001, U.P., India
jyotikala2010@gmail.com

Abstract

Many scientists propound the philosophy of 'After-birth abortion' on the logic that the interests of actual persons are more important than that of the embryos and infants, the potential persons. This paper is an attempt to suggest an appropriate solution to the complex situation of decision of killing of new born after birth from the point of view of the related scientific researchers.

Keywords- Actual person, potential person, antagonistic relationship, reproductive autonomy, euthanasia

प्रस्तावना

मानव जीवन अमूल्य है और मानव–जीवन की गरिमा भी। 10 दिसम्बर, 1948 को यूनाइटेड नेशन्स की जनरल असेम्बली ने मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को स्वीकृत किया। जिसके अनुसार प्रत्येक मानव को जीवित रहने का अधिकार उसके जन्म में निहित है। इस अधिकार का कानून द्वारा पालन होना चाहिए। किसी भी व्यक्ति के जीने के अधिकार को अचानक नहीं छीना जा सकता। सभी को जीवन का अधिकार, स्वतंत्रता तथा सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है और आधारभूत न्याय व्यवस्था के अतिरिक्त किसी भी हाल में उससे उसके जीवन के अधिकार को छीना नहीं जा सकता।[1] इसी नैतिक दृष्टिकोण के आधार पर अरूणा शानवाग 42 वर्ष तक निष्क्रियता की स्थिति(वेजिटेटिव स्टेट, कोमा जैसी स्थिति जिसमें आँखे खुली रहती हैं) में अस्पताल के बिस्तर पर पड़ी रहीं और अन्त में न्यूमोनिया की बीमारी ने उनकी इहलीला समाप्त की। पेशे से नर्स होने के नाते अस्पताल की सभी नर्सों की उनके दुःखद जीवन के प्रति सहानुभूति रही और उन सब ने मिलकर अरूणा की भरपूर सेवा की। परिणामतः अन्तिम समय तक उनके शरीर पर कोई 'बेडसोर'(घाव) नहीं था। यदि अरूणा शानवाग एक नर्स न होती तो घटित दुर्घटना के बावजूद इन 42 वर्षों के अन्तराल की कल्पना करना अत्यन्त कठिन है और एक जटिल प्रश्न उठता है कि क्या विषम परिस्थितियों में इच्छामृत्यु(यूथेनेसिया, कष्ट से निवृत्ति दिलाने के लिए मृत्यु का चयन) अथवा चिकित्सक की सहायता से आत्महत्या(फिजीशियन असिस्टेड स्युसाइड) जैसे विकल्पों का प्रयोग किया जाना चाहिए। अरूणा

शानवाग स्वयं कोई निर्णय लेने की स्थिति में नहीं थी। फिर किसे अधिकार प्राप्त था उनके 'जीवन के अधिकार' के विषय में निर्णय करने का? ऐसी जटिल परिस्थितियों में विभिन्न आयामों पर विचार किया जा सकता है और स्वयं सम्बन्धित व्यक्ति की राय भी महत्व रखती है। परन्तु गर्भस्थ एवं नवजात शिशु के सन्दर्भ में जो स्वयं कोई निर्णय लेने में अक्षम तथा असहाय हैं, जीवन के अधिकार अथवा जीवन–समाप्ति के प्रश्न का निर्णय करना दुष्कर है। साधारणतः यही प्रतीत होता है कि 'जीवन का अधिकार' सर्वोपरि है और इसे किसी भी हाल में छीना नहीं जा सकता। प्रस्तुत शोध पत्र में "जन्मोपरान्त गर्भपात", जो संवैधानिक दृष्टिकोण से पूर्णतः निषिद्ध है, का वैज्ञानिक शोध परिणामों के आधार पर विश्लेषण करके इस जटिल प्रश्न का संभावित उत्तर प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

वास्तविक तथा संभावित व्यक्ति

29 फरवरी 2012 को स्टीफन एडम्स ने 'जर्नल आफ मेडिकल एथिक्स' में अल्बर्टो ग्लुबिलिनि एवं फ्रांसेस्का मिनर्वा द्वारा लिखित लेख 'आफ्टर बर्थ एबार्शनः हुवाई शुड द बेबी लिव?' के सन्दर्भ में समाचार प्रकाशित किया कि विशेषज्ञ द्वय की राय में 'जन्मोपरान्त हत्या'(आफ्टर बर्थ किलिंग) तथा गर्भपात में कोई विभेद नहीं है तथा यदि नवजात में कोई विकार हो तो माता पिता को अपने जन्में शिशु के जीवन को समाप्त करने का अधिकार होना चाहिए। ग्लुबिलिनि एवं मिनर्वा के अनुसार नैतिक रूप से नवजात शिशु की स्थिति वही होती है जो कि गर्भाशय में भ्रूण की क्योंकि दोनों ही किसी व्यक्ति को प्राप्त जीवन का अधिकार' की नैतिक परिधि में नहीं आते। नवजात 'वास्तविक व्यक्ति'(एक्चुअल पर्सन) होने के बजाय 'संभावित व्यक्ति'(पोटेन्शियल पर्सन) होते हैं। उनके अनुसार व्यक्ति हम उस प्राणी को मानते हैं जो अपने जीवन को आधारभूत न्यूनतम मूल्य प्रदान कर सके और जीवन से वंचित किये जाने पर उस प्राणी को उस न्यूनतम मूल्य की हानि का अहसास हो। किसी नवजात शिशु का जीवन समाप्त किये जाने पर उस नवजात को किसी भी प्रकार की हानि की अनुभूति नहीं होती। अतः उन सभी परिस्थितियों में जहाँ गर्भपात की अनुमति है, नवजात शिशु का जीवन समाप्त करने की, अर्थात 'जन्मोपरान्त गर्भपात' की अनुमति भी दी जानी चाहिए भले ही वह शिशु स्वस्थ क्यों न हों।[2] (लेखक द्वय को लेख प्रकाशन के समय से ही मृत्यु की धमकियाँ मिल रही हैं।)

नवजात को आसान मृत्यु का दर्शन

कई दार्शनिकों ने 'यूथेनेसिया इन इन्फैन्ट्स' का विचार प्रस्तावित किया है। चिकित्सा प्रोफेशनल्स भी उन दिशा निर्देशों के निर्धारण की आवश्यकता पर बल देते हैं जहाँ गंभीर विकारों की स्थिति में बच्चों के लिए जीवन जीना असहनीय पीड़ा का कारण बन जाने की स्थिति में जन्मोपरान्त गर्भपात को स्वयं बच्चे के हित में माना जा सकता है। जैसे कि नीदरलैण्ड का ग्रोनिन्जेन प्रोटोकॉल(2002) गंभीर लाइलाज बीमारियों से ग्रसित नवजात के जीवन को समाप्त किये जाने की बात करता है यदि चिकित्सा विशेषज्ञ तथा माता–पिता बच्चे के लिए असहनीय पीड़ा की स्थिति पाते है।[3]

गर्भपात तथा जन्मोपरान्त गर्भपात की तुलना

अधिकांशतः भ्रूण में विकार होने अथवा स्त्री के मानसिक स्वास्थ्य में बाधक होने की दशा को गर्भपात का वाजिब आधार माना जाता है। परन्तु एक गम्भीर दार्शनिक प्रश्न तब उत्पन्न होता है जब किसी प्रकार के विकार का ज्ञान शिशु के जन्म लेने के बाद हो अथवा जन्म के समय परिस्थितियां बदल गई हों जैसे जन्म के समय स्त्री ने अपना साथी खो दिया हो और वह शिशु का दायित्व वहन करने में असमर्थ हो। ऐसी परिस्थितियों में वैज्ञानिकों की राय है कि उन सभी परिस्थितियों में जहां गर्भपात की अनुमित है, जन्मोपरान्त भी नवजात का जीवन समाप्त करने की अनुमति दी जानी चाहिए। उदाहरणार्थ–'पेरिनेटल एस्फिक्सिया' –जिसमें मस्तिष्क को गंभीर क्षति होने के कारण शिशु को मानसिक तथा शारीरिक असमन्जस का कष्ट होने की स्थिति में कोई स्त्री गर्भपात की प्रार्थना कर सकती है। परन्तु जन्मपूर्व आनुवांशिक आधार पर भले ही विकारों की संभावना हो परन्तु उसका ज्ञान हो पाना हमेशा संभव नहीं होता। कई बार स्वस्थ माता–पिता के युग्मक में परिवर्तन के कारण भी विकार उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे–टी0सी0एस0(ट्रैचर–कॉलिन्स सिन्ड्रोम) की स्थिति में। 10,000 में से किसी एक को टी0सी0एस0 की परेशानी होती है जिसमें चेहरे में कुरूपता एवं सम्बन्धित शारीरिक अक्षमताओं जैसे कष्ट होते हैं। विशेषतः प्राणघातक श्वसन तंत्र सम्बंधी विकार उत्पन्न होने का अंदेशा होता है। साधारणतः टी0सी0एस0 से प्रभावित व्यक्ति मानसिक रूप से अस्वस्थ नहीं होते और अपनी विकृति के प्रति जागरूक होते हैं। यदि जन्मपूर्व युग्मक परीक्षण में ज्ञात हो जाये कि होने वाला बच्चा टी0सी0एस0 से प्रभावित है तो बहुत से माता–पिता गर्भपात को उचित समझेंगे। टी0सी0एस0 हेतु परीक्षण काफी महंगा होता है तथा इसके परिणाम प्राप्त होने में कई सप्ताह लग जाते हैं। अतैव यह परीक्षण साधारणतः नहीं किये जाते यदि टी0सी0एस0 का पारिवारिक इतिहास न हो। परन्तु कभी–कभी स्वस्थ माता पिता के युग्मकों में परिवर्तन होने के कारण बिना परीक्षण के व्याधि–ग्रसित शिशु का जन्म होने की स्थिति में जन्मोपरान्त नवजात का जीवन समाप्त किया जाये या नहीं, यह जटिल प्रश्न उत्पन्न होता है न केवल टी0सी0एस0 जैसी गंभीर व्याधि अपरीक्षित रह जाती है बल्कि बहुत बार साधारण जन्मजात(कॉमन कान्जेनाइटल) बीमारियां भी परीक्षण में पता नहीं लग पाती। 2005 से 2009 के बीच यूरोपीय देशों में पाया

गया कि सिर्फ 64 प्रतिशत डोउन्स सिन्ड्रोम के केस ही जन्मपूर्व परीक्षणों में पता लगाये जा सके हैं। इस प्रतिशत से ज्ञात होता है कि अध्ययन किये गये सिर्फ यूरोपीय क्षेत्र में ही लगभग 1700 नवजात डाउन्स सिन्ड्रोम से पीड़ित पाये गये जिनके बारे में माता–पिता को उनके जन्म से पूर्व ज्ञान नहीं हो पाया था।[4] एक बार जब ऐसा बच्चा जन्म ले लेता है तो माता–पिता के पास उसको पालने के सिवा और कोई रास्ता नहीं रह जाता जबकि यदि जन्मपूर्व इसका ज्ञान हो जाता तो निश्चित ही वह ऐसे बच्चे को जन्म न देने का निर्णय लेते। इस आधार पर कुछ वैज्ञानिकों का विचार है क्योंकि भ्रूण तथा नवजात दोनों ही नैतिक रूप से वास्तविक व्यक्ति न होकर भविष्य के संभावित व्यक्ति हैं और वर्तमान स्थिति में नैतिक रूप से महत्वहीन हैं, अतः जन्मोपरान्त गर्भपात अर्थात जन्म होने के बाद नवजात शिशु का जीवन समाप्त कर देने की आज्ञा दी जानी चाहिए।

जीवन के अधिकार की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि

यूं तो गर्भधारण के साथ ही एक नये जीवन की आशा जन्म ले लेती है और सकारात्मक परिस्थितियों में नवजात का आगमन स्वागत योग्य होता है। परन्तु वैज्ञानिकों की राय में न केवल गर्भधारण के प्रारम्भिक सप्ताहों में अपितु नवजात के जन्म के उपरान्त भी शिशु की स्थिति 'अ–व्यक्ति' की होती है। यूनाइटेड किंगडम में 90 प्रतिशत गर्भपात गर्भावस्था के 12 सप्ताह के अन्दर किये जाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से कोई संशय नहीं है कि इस अवधि में भ्रूण में किसी भी प्रकार की चेतनता का विकास नही होता है। गर्भधारण के 3–4 सप्ताह तक भ्रूण का मस्तिष्क एक खोखली नली के रूप में होता है जिसके भीतर न्यूरॉन विभाजित होते रहते हैं। 4 से 8 सप्ताह के बीच न्यूरल टिशू /ऊतक विकसित होकर मस्तिष्क के अग्रमस्तिष्क, पश्चमस्तिष्क तथा मेरूदण्ड (फोरब्रेन, हाईन्डब्रेन और स्पाइनल कार्ड) आदि बनाने के लिए विभाजित हो जाते हैं। आठवें सप्ताह से पहचाने जाने योग्य मुखाकृति दिखनी प्रारम्भ हो जाती है और सेरेब्रल कॉरटेक्स दो स्पष्ट अर्द्धगोलों में विभाजित हो जाता है। यद्यपि 12 सप्ताह के बाद भ्रूण एक मानवाकृति की भाँति दिखने लगता है लेकिन चेतनता की जागरूकता हेतु उत्तरदायी न्यूरल सर्किट अभी तक विकसित नहीं होते। जैसे–जैसे भ्रूण के मस्तिष्क की संरचना जटिल होती जाती है और उसका मस्तिष्क एक व्यस्क मस्तिष्क के समान प्रतीत होने लगता है, भ्रूण की वातावरण को अनुभव करने तथा प्रतिक्रिया करने की क्षमता विकसित होने लगती है। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि 16 वें हफ्ते से भ्रूण कम आवृत्ति की ध्वनि पर प्रतिक्रिया करने लगता है और 19 वें हफ्ते तक दर्द महसूस होने पर हाथ अथवा पैर समेटने जैसी संकुचन व विमुखता की प्रतिक्रिया देने लगता है। देखने वाले को यह प्रतिक्रिया काफी हद तक चेतनता के जागरण का आरम्भ प्रतीत हो सकते हैं। जबकि इन आरम्भिक सप्ताहों में इस प्रकार के इन्द्रियबोध को चेतनता में परिवर्तित करने वाले तंत्रिका मार्गों (न्यूरल पाथवेज) का विकास होना बाकी होता है। जिसका तात्पर्य है कि यह गतिविधियां अनैच्छिक सजगता(रिफ्लेक्सेज) मात्र हैं जो कि विकसित हो रहे मस्तिष्क स्तम्भ(ब्रेन स्टेम) तथा मेरूदण्ड के नियन्त्रण में होती है। पीड़ा को अनुभव करने के लिए आवश्यक मस्तिष्क संरचायें 29–30 सप्ताह तक विकसित नहीं होती हालांकि ध्वनि का बोध संसाधन(कान्सियस प्रोसेसिंग) 26 वें सप्ताह से सम्भव हो जाता है। भ्रूण के मस्तिष्क में वयस्क मस्तिष्क के समान सभी संरचनायें विकसित हो जाने पर भी वैज्ञानिक भ्रूण मस्तिष्क की चेतनता के विषय में सावधानी बरतते हैं इसके दो मुख्य कारण हैं प्रथम कम मात्रा में ऑक्सीजन की उपस्थिति तथा द्वितीय–प्लासेंटा से नींद उत्प्रेरक रसायनों द्वारा लगातार बांध, जो भ्रूण का जन्म होने तक उसे बेहोशी की अवस्था में बनाये रखते हैं।[5] जन्मोपरान्त गर्भपात के समर्थक दलील देते हैं कि नैतिक रूप से नवजात की स्थिति भ्रूण की नैतिक स्थिति के समान ही होती है। क्योंकि दोनों में ही उन गुणों का अभाव होता है जो किसी व्यक्ति को जीवन का अधिकार प्रदान करने के लिए आवश्यक होते हैं। अर्थात् कोई व्यक्ति कम से कम उस स्थिति में होना चाहिए कि उन विभिन्न परिस्थितियों का मूल्यांकन कर सके जिन्हें वह प्राप्त कर सकता है यदि उसे हानि न पहुँचाई जाये और यह स्थिति उसके मानसिक विकास के स्तर पर निर्भर करती है।[6] बमुश्किल कोई नवजात अपने जीवन का उद्देश्य निर्धारण कर उसे मूल्य प्रदान कर सकता है। अतः वैज्ञानिकों के अनुसार जन्मोपरान्त गर्भपात की स्वीकृति दी जानी चाहिए।

प्रजनन स्वायत्ता तथा अन्तर्विरोधी सम्बन्ध

माननवीय दृष्टिकोण से यदि भ्रूण और नवजात पीड़ा का अनुभव कर सकते हैं तो उनका नैतिक अधिकार है कि उन्हें कष्ट न दिया जाये। परन्तु दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा प्रजनन स्वायत्तता के समर्थक वास्तविक व्यक्ति(स्त्री) के हितों को संभावित व्यक्ति(भ्रूण एवं नवजात) के हितों से ऊपर मानते हैं। बहुत बार एक स्त्री तथा उसके अजन्में शिशु के बीच अन्तर्विरोधी सम्बंध(एन्टागॉनिस्टिक रिलेशनशिप) की समस्या उत्पन्न हो जाती है। सविता हलप्पनवर की मृत्यु की पृष्ठभूमि में अजन्में बच्चे का जीवन का अधिकार तथा स्त्री की अपने जीवन व शरीर की स्वायत्तता के अधिकार के बीच अन्तर्विरोध जैसा प्रश्न विचारणीय हो गया है। बारबरा ह्यूसन एक वकील के नजरिये से कहती हैं कि स्त्री की स्वायत्तता को प्रधानता दी जानी चाहिए। यूनाइटेड स्टेट्स तथा आयरलैण्ड का कानून भ्रूण के अधिकारों को ज्यादा महत्व देता है। 'इन्टरनेशनल कोवेनैन्ट ऑन सिविल एण्ड पॉलिटिकल राइट्स'(1966) के आर्टिकिल 6 के अनुसार– राज्य प्रत्येक बच्चे के 'जीवन का अधिकार' को नैसर्गिक अधिकार मानता है तथा सर्वाधिक रूप से बच्चे के जीवन की रक्षा तथा विकास पर बल देता है।[7] इसी क्रम में एन फ्यूरेडी के विचारानुसार मुद्दा यह नहीं है कि कब भ्रूण जीवन का सम्मान पाने का हकदार हो जाता है, बल्कि यह है कि

जिसे स्वयं यह ज्ञात नहीं है कि वह जीवित है भी या नहीं, उसके जीवन को उस स्त्री, जो उसे धारण कर रही है, के जीवन के मूल्य और सम्मान की तुलना में कितना सम्मान और मूल्य देना चाहिए।[8] फ्यूरेडी के अनुसार भ्रूण के अधिकारों की चर्चा करते समय लोग स्त्रियों के जीवन की गम्भीर वास्तविकताओं को दरकिनार कर देते हैं तथा स्त्री को जन्म देने का साधनमात्र समझकर उसके शरीर तथा प्रजनन की स्वायत्ता पर आघात करते हैं।स्वयं बारबरा ह्यूसन प्रश्न उठाती हैं कि यदि कोई गर्भवती स्त्री गर्भधारण नहीं करना चाहती है तो उसे क्यों रोका जाये? विज्ञान की दृष्टि से अन्य स्तनधारियों के समान ही मानव भी प्रजनन करता है और जन्म होने की प्रक्रिया विकास(इवाल्यूशन) का परिणाम है। जैव वैज्ञानिक रूप से भ्रूण एक अतिक्रमणकारी जीव के समान होता है, और यदि सम्पूरक तन्त्र का जटिल तंत्र(कॉम्प्लेक्स सिस्टम आफ कम्पन्सेटिंग मैकेनिज्म) न हो तो स्त्री का शरीर उसे वैसे ही नकार देगा जैसे किसी प्रत्यारोपित अंग को गर्भधारण एवं प्रसव जीवन की महत्वपूर्ण घटनायें हैं जिनका स्त्री के जीवन पर गम्भीर प्रभाव पड़ सकता है। सामाजिक रूप से शिशु का पालन करने वाली स्त्री को नियोक्ता नौकरी देने से कतराते हैं। क्योंकि अवांछित भ्रूण अतिक्रमणकारी जीव के अनुरूप होता है, भले ही वह संभावित व्यक्ति ही क्यों न हो, स्त्री को उसे जीवन प्रदान करने की प्रक्रिया से स्वयं को मुक्त रखने तथा अपने हित में गर्भपात कराने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। नैतिक रूप से भी किसी स्त्री को प्रजनन का साधन मात्र के रूप में माना जाना आपत्तिजनक है।[9] जिस समाज में स्त्री तनावग्रस्त व असुरक्षित हो वहाँ निःसंदेह गर्भवती माँ की मानसिक स्थिति का प्रभाव गर्भस्थ भ्रूण पर पड़ता है। "प्री एण्ड प्रोस्टनेटल हॉलिस्टिक हेल्थ केयर' के प्रशिक्षक जेम्स गुडिएट मानते हैं कि गर्भवती स्त्री के विचारों का सम्बंध अजन्मे शिशु से रहता है और जो कुछ भी गर्भवती स्त्री अनुभव या विचार करती है वह न्यूरोहारमोन के द्वारा अजन्मे बच्चे तक संचारित होता है।[10] डॉ0 दीपक चोपड़ा 'मैजिकल बिगनिन्स, इन्चान्टेड लाइव्स' में स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि गर्भावस्था पर किये गये शोध से स्पष्ट है कि जब एक गभर्वती माँ तनावग्रस्त, भयभीत अथवा बेचैन होती है तो उसके रक्त में संचारित 'स्ट्रेस हारमोन' प्लासेन्टा के जरिये गर्भस्थ शिशु तक पहुँचते हैं। अनेकों अध्ययनों से स्पष्ट निर्धारित हो चुका है कि गर्भवती माँ के शरीर में प्रभावित रसायन गर्भ तक स्थानान्तरति होते हैं तथा गर्भस्थ को प्रभावित करते हैं।[11] कोशिका जीव वैज्ञानिक एवं नयूरोसाइंन्टिस्ट ब्रूस लिप्टन कहते हैं कि तनावग्रस्त माँ के हारमोन प्लासेन्टा से पार होकर भ्रूण के रक्त संचारण को परिवर्तित कर देता है जिसका प्रभाव विकसित हो रहे शिशु के शारीरिक संगठन पर पड़ता है।[12] अतः राज्य एवं समाज द्वारा स्त्री को जन्म देने पर मजबूर नहीं किया जाना चाहिए तथा गर्भपात की अनुमति मिलनी चाहिए। वैज्ञानिकों के अनुसार उन सभी परिस्थितियों में जहाँ गर्भपात की अनुमति होती है जन्मोपरान्त गर्भपात की अनुमति भी होनी चाहिए क्योंकि भ्रूण एवं नवजात 'अ–व्यक्ति' होते हैं।

एक पक्ष यह भी है कि अ–व्यक्ति(भ्रूण एवं नवजात) को वास्तविक व्यक्ति जैसे माँ के दृष्टिकोण से नैतिक मूल्य प्रदान किया जा सकता है परन्तु इस व्यक्तिपरक(सब्जेक्टिव) दृष्टिकोण को वैज्ञानिक अस्वीकार करते हैं। उनके अनुसार कल्पना कीजिए यदि किसी स्त्री के गर्भ में जुड़वा भ्रूण पल रहे हों जो आनुवांशिक विकार से ग्रसित हों। यदि स्त्री को विकल्प दिया जाये कि वह किसी एक भ्रूण का प्रयोग दूसरे का उपचार विकसित करने के लिए कर ले और वह स्वीकार करती है तो वह प्रथम भ्रूण को 'भविष्य की संतान' तथा दूसरे को सिर्फ 'भविष्य की संतान' के उपचार का साधन मात्र मानती है। परन्तु ऐसी स्थिति यदि जन्मोंपरान्त उत्पन्न हो जाये तो निर्णय करना मुश्किल है भले ही नवजात परिवार के लिए बोझ क्यों न बन जाये। वैज्ञानिकों के अनुसार क्षति होना तब होता है जब सम्बन्धित जीव किसी उस हानि का अनुभव कर सकें। क्योंकि भ्रूण एवं नवजात हानि का अनुभव करने में सक्षम नहीं है अतः गर्भपात के समान ही जन्मोंपरान्त गर्भपात भी नवजात के लिए कोई हानि नहीं है। जबकि ऐसे बच्चों को पालने की स्थिति में परिवार, समाज एवं राज्य पर असहनीय भार पड़ सकता है।

जन्मोपरान्त गर्भपात का विश्लेषण

यद्यपि यह घोषित करना कि गम्भीर परिस्थितियों में जब नवजात का जीवन जीना उसके अपने हित में न हो जन्मोपरान्त गर्भपात का विकल्प उचित प्रतीत हो सकता है तथापि व्याधियों के साथ जीवन जीना उपयोगी है या नहीं यह तर्क का विषय है जबकि यही स्थिति गर्भपात के लिय पर्याप्त आधार हो सकती है। विश्वविख्यात भौतिक शास्त्री स्टीफन हाकिन्स जो मोटर डिस्आर्डर के कारण चलने फिरने में असमर्थ हैं, निर्णय करते हैं कि वह अभी विश्व समाज को और योगदान दे सकते हैं तथा अपने पूर्वनिर्धारित 'फिजीशियन असिस्टेड स्युसाइड' के विचार को फिलहाल स्थगति कर देते हैं। यह तथ्य है कि डाउन्स सिंड्रोम वाले बच्चों के जीवन को आशापूर्ण दृष्टि से देखने के बावजूद उनके सम्भावित जीवन की तुलना सामान्य बच्चे के जीवन से नहीं की जा सकती।[13] परन्तु वास्तविकता यह भी है कि डाउन्स सिंड्रोम तथा अन्य गम्भीर विकार से ग्रसित लोग अक्सर प्रसन्नचित्त पाये गये है।[14] इ0जे0 इमान्युल, ई0आर0डेनिन्यल्स, डी0आई0 फेयरप्लाह तथा बी0आर0 क्लैरिज ने 155 ऑन्कोलाजी मरीजों, 355 ऑन्कोलाजिस्ट तथा 193 जनसदस्यों से यूथेनेसिया तथा फिजीशियन असिस्टेड स्युसाइड पर साक्षात्कार किया। लगभग दो तिहाई मरीजों एवं जनसदस्यों ने असहनीय दर्द से पीड़ित मरीजों के लिए इच्छामृत्यु एवं चिकित्सक की सहायता से आत्महत्या को स्वीकृति दी। परन्तु जब मरीजों और जनसदस्यों को 'परिवार पर बोझ', 'अर्थहीन जीवन' जैसे शब्दचित्र दिखाकर राय ली गई तो उन्होंने वैकल्पिक आसान मृत्यु को सबसे कम स्वीकृति दी। शब्द चित्र देखें बिना ऑन्कोलॉजिस्ट ने निरन्तर दर्द झेल रहे मरीजों के लिए नैतिक रूप से वैकल्पिक मृत्यु को स्वीकारा। परन्तु इसके विपरित वास्तविक दर्द सह रहे मरीजों में इच्छामृत्यु अथवा चिकित्सक द्वारा आसान मृत्यु के प्रति अस्वीकृति का नजरिया

दिखा। जबकि एक चौथाई मरीजों ने इस प्रकार जीवन का अन्त करने के विषय पर बातचीत की और करीब 12 प्रतिशत ने गम्भीरता पूर्वक चिकित्सक से विषय पर विचार किया। उल्लेखनीय है कि अवसाद अथवा मानसिक दबाव से ग्रसित मरीजों ने गम्भीरतापूर्वक इस बारे में बात की। पीड़ा सह रहे ऑनकोलॉजी मरीजों ने आसान मृत्यु की ओर रूझान नहीं दिलाया जबकि ऑनकोलॉजी के साथ अवसाद से ग्रसित रोगियों ने आत्महत्या करने में सहायता की प्रार्थना की। साक्षात्कार से निष्कर्ष निकला कि अवसाद ग्रसित मरीजों का पहले अवसाद का उपचार करने के पश्चात् उनसे इच्छामृत्यु के विकल्प पर विचार लेने चाहिए। आधे से अधिक ऑन्कोलॉजिस्ट को आसान मृत्यु प्रदान करने के लिए प्रार्थना मिल चुकी थी और सात में से एक आन्कोलाजिस्ट ने आसान मृत्यु प्रदान भी की थी।[15]

विदित है कि जीवन का अन्त करने का निर्णय काफी कठिन है और विभिन्न परिस्थितियों में एक ही प्रश्न का उत्तर विभिन्न व्यक्तियों के लिए अलग–अलग होता है और बहुत बार स्वयं कष्टग्रस्त व्यक्ति अपने जीवन के अधिकार को खोना नहीं चाहता।

निष्कर्ष

नवजात शिशु में कुछ सीमा तक आत्मजागरूकता एवं प्रत्याशा होती है। जन्म के आखिरी हफ्ते से पहले न्यूरल पाथवेज बन जाने के बाद गर्भस्थ शिशु अल्पविकसित याददाश्त बना सकता है जैसे जन्मोपरान्त वह मां की आवाज, गर्भानुकूल गंध के प्रति रूझान (नवजात एम्नियाटिक फ्ल्यूड के प्रति रूचि दिखाते हैं) आदि दिखा सकते हैं तथापि वह वास्तविक व्यक्ति न होकर केवल संभावित व्यक्ति होते हैं। उनके सम्भावित भविष्य की कल्पना कतिपय हमारे अपने मस्तिष्क की उपज होती है जिसके वास्तविक जीवन में निष्पादित होने की सम्भावना होती है। न सिर्फ नवजात के उद्देश्य बल्कि उससे सम्बंधित माता–पिता, भाई–बहन, समाज व राज्य के हित का भी प्रश्न है जिनके भली भाँति पूर्व निर्धारित उद्देश्य अवांछित संतान के कारण प्रभावित हो सकते हैं। अतः सम्बंधित वास्तविक लोगों के अधिकारों तथा हितों का ध्यान जन्मोंपरान्त गर्भपात का निर्णय लेते समय रखना आवश्यक है। वैज्ञानिक दर्शन के अनुसार संविधान द्वारा स्त्री की स्वायत्तता तथा परिवार, समाज व राज्य के हित में जन्मोंपरान्त गर्भपात विषयक उचित कानून निर्माण की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. मानव अधिकारों की विश्व व्यापी घोषणा, https:en.wikipedia.org/wiki/Rightto_life. अनुच्छेद 1 व 3।
2.www.telegraph.co.uk/news/health/news/9113394/killing-babies-no-different-from-abortion-experts-say.html.
3. वर्हगेन, ई0 एवं साउर, पी0(2005) द ग्रोनिन्जेन प्रोटोकाल–यूथेनेसिया इन सिवियर्ली इल न्यूबोर्न्स, एन0 इंग्लिश ज0 मेडि0, खण्ड–10, मु0पृ0 959–962।
4. कुह्से, एच0 एवं सिंगर, पी0(1985) शुड द बेबी लिव? द प्राबलम आफ हैण्डीकैप्ड इन्फैट्स. आक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1985, 143।
5. यूरोपियन सर्विलान्स आफ कान्जेनाइटल एनामलीज, यूरोकैट डाटाबेस. http://www.eurocat-network.eu/ प्रीनेटल स्त्रीनिंग एण्ड डायग्नांसिस /प्रीनेटल डिक्टेशन रेट्स।
6. टूले, एम0(1972) एबार्शन एण्ड इन्फैन्टीसाइड, फिला0 पब्लिक एफ0, खण्ड–1, मु0पृ0 37–65।
7. www.cirp.org/library/ehics/UN-covenant/
8. फ्यूरेडी, ए0(2000) वीमन वर्सेस बेबीजः कमण्ट एण्ड एनालिसिस. द गार्डीयन 2000, फरवरी 22।
9. बारबरा, ह्यूसन(2001), रिप्रोडक्टिव आटोनामी एण्ड द इथिक्स आफ एबार्शन, ज0 ऑफ मेडि0 इथिक्स, खण्ड–27, अंक–2, मु0पृ0 10.14।
10. जेम्स गुडिएट, प्रि एण्ड पोस्टनेटल हॉलिस्टिक हेल्थ केयर कोच, www.theepochtimes.com/n3/blog/a-mothers-emotions-affect-her-unborn-child/
11. तदैव
12. तदैव
13. सन्दर्भ संख्या –3
14. एल्डर्सन, पी0(2001) डाउन्स सिन्ड्रोम : कॉस्ट, क्वालिटी एण्ड द वैल्यू ऑफ लाइफ, सोसा0 साइं0 मेडि0, खण्ड–5, मु0पृ0 627–638।
15. www.sciencedirect.com/science/article/pii80140673696916219/ द लैन्सेट, यूथेनेसिया एण्ड फिजीशियन असिस्टेड स्युसाइड : एटीट्यूड्स एण्ड एक्सपेरिमेन्ट्स आफ ऑन्कोलाजी पेशेन्ट्स, ऑन्कोलाजिस्ट्स, एण्ड द पब्लिक।